Vol.10 May'17 No.10
Annual Subscription : Rs 100
Rs. 10/- per copy

ब्रह्मार्पण

BRAHMARPAN

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्

A Monthly publication of Brahmasha India Vedic Research Foundation

Brahmasha India Vedic Research Foundation
ब्रह्माशा इंडिया वैदिक रिसर्च फाउन्डेशन

आधा-अधूरा

-महात्मा चैतन्यमुनि

किसी लौकिक कामना
व परिणाम पर केन्द्रीय सृजन
वास्तविक सृजन नहीं
कामना-पूर्ति का एक उपक्रम है
आधा-अधूरा प्रयत्न है।
निष्काम-केन्द्रीय सृजन
निज उपलब्धि है
जय-पराजय से निरपेक्ष
सृजन ही अनुपम है
जीवन-पर्व का सगुन है....।
जो सृजन
किसी प्रलोभन
मजबूरी,
भय को लक्षित है
वह क्षणिक सुख तक तो
पहुँचा देगा
मगर तृप्ति और आनन्द तक नहीं।
जहाँ मार्ग में इच्छा का
या किसी विशेष कामना का
बोझ साथ में हो
वहाँ न तो वह
यात्रा ही आनन्द देगी
न उसकी उपलब्धि ही परिपूर्ण है
देश-काल का हस्तक्षेप
मार्ग में चलने का आनन्द भी हर लेगा।
यात्रा के उस उपक्रम में
यात्री चलेगा तो सही
पर अन्तर्मन में डूब कर नहीं
और जिस सृजन का आधार
बाह्य-वृत्ति तक ही सीमित हो
वह किसी दृष्टि से भी महान् नहीं
कुछ और भले ही हो मगर
परमानन्द का अनुष्ठान नहीं....।

महादेव, सुन्दरनगर,
जिला मण्डी, हि.प्र.-175019

BRAHMASHA INDIA VEDIC RESEARCH FOUNDATION ACKNOWLEDGES WITH THANKS RECEIPT OF THE FOLLOWING DONATION.

1. Mrs. Madhu Pathak, 64 Vidya Vihar, New Delhi-110034 500/-
2. Mrs. Anju Sharma, KG-1/173, Vikaspuri, New Delhi-110018 500/-

Donations to the Foundation are eligible for Tax Exemption under Section 80G of the Income Tax Act 1960 Vide No.DIT(E)1/3313/DELBE 21670-2503210 dated 25.03.2010

BRAHMASHA INDIA VEDIC RESEARCH FOUNDATION

C2A/58, Janakpuri,
New Delhi-110058
Tel :- 25525128, 9313749812
email:deeukhal@yahoo.co.uk
brahmasha@gmail.com
Website : www.thearyasamaj.org
of Delhi Arya Pratinidhi Sabha

Sh. B.D. Ukhul
Secretary
Dr. B.B. Vidyalankar 0124-4948597
President
Col.(Dr.) Dalmir Singh (Retd.)
V.President
Dr. Mahendra Gupta *V.President*
Ms. Deepti Malhotra
Treasurer
Editorial Board
Dr. Bharat Bhushan Vidyalankar, Editor
Dr. Harish Chandra
Dr. Mahendra Gupta
Acharya Gyaneshwararya

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्याय क्षेत्र दिल्ली ही होगा।

Printed & Published by
B.D. Ukhul for Brahmasha India Vedic Research Foundation
Under D.C.P.
License No. F2 (B-39) Press/ 2007
R.N.I. Reg. No. DELBIL/ 2007/22062
Price : Rs. 10.00 per copy
Annual Subscription : Rs. 100.00

Brahmarpan Mayl'17 Vol. 10 No.10
वैशाख-ज्येष्ठ 2074 वि.संवत्

ब्रह्मार्पण
BRAHMARPAN

A bilingual Publication of Brahmasha India Vedic Research Foundation

CONTENTS

1. आधा-अधूरा 2
-महात्मा चैतन्यमुनि

2. संपादकीय 4

3. सांख्य दर्शन 10
-डॉ. भारत भूषण

4. वेदों में विज्ञान के उद्घोषक : स्वामी दयानन्द 11
-डॉ. महावीर मीमांसक

5. सर्वत्र विजयी कैसे हों? 17
-महात्मा चैतन्यमुनि

6 हिन्दुत्व 'बहुत पावरफुल कल्चर है
*-डेविड फ्रॉली (वैदिक टीचर)*21

7. भारतीय संस्कृति के प्राण तत्त्व 26
-प्रो. भवानीलाल भारतीय

8. इंसानियत का कारखाना 33
-रैनू सैनी

9. 'All Religions Are True' 34
-Swami Vivekanand

संपादकीय

धर्मान्तरण और शुद्धि

इस्लाम में प्रचार के लिए भारत में तथा अन्य देशों में भी जो उपाय अपनाये गये, उन्हें देखते हुए कहा जा सकता है कि इस्लाम धर्म कम और अधर्म अधिक है। किसी भी राजा या सेना को शस्त्र बल से हरा देने के बाद मृत्यु का भय दिखा कर उसे मुहम्मद पर विश्वास करने के लिए विवश करना किसी प्रकार धार्मिक कृत्य नहीं कहा जा सकता। फिर, मुसलमानों की यह भी कूटनीति थी कि यदि कोई व्यक्ति एक बार मुसलमान बन जाने के बाद फिर दूसरे धर्म को अपना ले तो उसे मार दिया जाए। इसका अर्थ यह है कि मुसलमानों से हार जाने वाले लोगों के सिर पर मौत की तलवार सदा लटकी रहती है।

मृत्यु भय से धर्मान्तरण

ऐसी दशा में भी बहुत से लोग मुसलमान नहीं बने और उन्होंने मर जाना स्वीकार किया। परन्तु जो लोग इस प्रकार दबाव में आकर मुसलमान बन गये, उन्हें मैं तनिक भी दोषी नहीं मानता। जीवन हर किसी को प्यारा होता है। सुन्नत कराने और गर्दन कटवाने में से यदि एक को चुनना हो तो अधिकांश लोग पहले विकल्प को ही चुनेंगे। यह ठीक है कि एक बार सुन्नत हो जाने के बाद इस जीवन में वह फिर जुड़ नहीं सकता, न बाल और नाखून की तरह नया उग सकता है परन्तु धर्म कोई शरीर की वस्तु नहीं है, मन की वस्तु है इसलिए कोई भी मुसलमान जब चाहे तब फिर हिन्दू बन सकता है। 'जीवन्नरो भद्रशतानि पश्यति' (आदमी जिन्दा रहे तो फिर भले दिनों को देख पाता है) इसलिए सिर पर

आई मौत को टालने के लिए जो लोग मुसलमान बन गये, उन्होंने नीति की दृष्टि से सही ही काम किया।

परन्तु हिन्दू समाज ही विकृत हो गया था। उसकी एकता समाप्त हो गई थी। शस्त्र बल समाप्त हो गया था; तभी वह पराजित हुआ था। सौ सैनिक लड़ते थे, बाकी हजारों प्रजाजन खड़े देखते थे। वे समझते थे कि लड़ाई शासन, प्रभुत्व के लिए है। जो भी जीत जायेगा, हम उसके अधीन रह लेंगे। उन्हें अपनी स्वाधीनता की चिन्ता नहीं थी।

पहले जो शक और हूण आक्रमणकारी आये थे, उन्होंने जीतने के बाद केवल शासन पर अधिकार किया था; किसी को अपना धर्म त्यागने के लिए विवश नहीं किया था। परन्तु महमूद गजनवी के बाद जितने मुसलमान लुटेरे आक्रमणकारी आये, उन्होंने पराजित हिन्दुओं के सामने इस्लाम या मृत्यु में से एक को चुनने का विकल्प रखा। ये शकों और हूणों से अधिक बर्बर और हिंसक थे।

हिन्दुओं की कट्टरता

हिन्दुओं में कमी यह थी कि उन्होंने मुसलमान बने हिन्दुओं को मुसलमान मान कर उन्हें धर्मभ्रष्ट मान लिया जबकि वे कहते रहे कि हम मजबूरी में मुसलमान बने, हम हिन्दू ही रहना चाहते हैं। हिन्दुओं में ब्राह्मणों ने पवित्रता और शुद्धता की एक ऐसी मिथ्या धारणा बना ली थी कि गाय की हड्डी छुआ देने भर से हिन्दू धर्म भ्रष्ट, मान लिया जाता था। आज हिन्दू अंडे और मांस खाकर भी हिन्दू बना रहता है। आज कई नेता तो गोमांस खाकर भी हिन्दू बने हैं। परन्तु उस युग में विचारों की ऐसी उदारता नहीं थी। लाखों मुसलमान शुद्ध होकर हिन्दू बनने के लिए लालायित थे परन्तु पंडितों ने उन्हें हिन्दू नहीं बनने दिया।

पंडितों का वह युग स्वामी दयानन्द के आगमन तक चलता

रहा। दयानन्द जी ने देखा कि यदि यही क्रम चलता रहा तो हिन्दू जबरदस्ती या धोखे से, या लालच से मुसलमान बनते रहेंगे, और मुसलमान को किसी तरह हिन्दू नहीं बनाया जा सकता। तो बहुत जल्दी वह दिन आ जाएगा, जब इस देश में कोई हिन्दू बचेगा ही नहीं। उन्होंने शुद्धि का द्वार खोल दिया। जो भी हिन्दू स्वेच्छा से, या विवशता में मुसलमान बन गया हो, वह जब चाहे, वेद मंत्र पढ़ कर फिर आर्य (हिन्दू) बन सकता है।

आर्यसमाज का शुद्धि आन्दोलन

इस शुद्धि आन्दोलन को स्वामी श्रद्धानन्द और महात्मा हंसराज ने मिल कर चलाया। उत्तर प्रदेश के आगरा क्षेत्र में ऐसे लाखों राजपूत रहते थे जिन्हें औरंगजेब के इस्लामपरस्त अत्याचारी शासन में बलपूर्वक मुसलमान बना लिया गया था। ये मलकाने राजपूत कहलाते थे। वे कहने को मुसलमान थे परन्तु उनका रहन-सहन, रीति-रिवाज सब हिन्दुओं के ही थे। ज़रा से प्रोत्साहन की आवश्यकता थी कि वे सब हिन्दू बनने को तैयार हो गये। यह सन्1921-22 की बात है।

शुद्धि और सत्याग्रह

संयोग ऐसा हुआ कि उन्हीं दिनों गाँधी जी ने अपना सत्याग्रह आन्दोलन भी चलाया। गाँधी जी अफ्रीका में यश कमा कर आये थे। वहाँ गोरों के विरुद्ध हिन्दू-मुसलमान एक होकर लड़े थे। इसलिए गाँधी जी के मन पर हिन्दू-मुस्लिम एकता का भूत सवार था। उनका विचार था कि हिन्दू-मुस्लिम एकता के बिना स्वतंत्रता कभी नहीं मिल सकती। इतिहास ने गाँधी जी को गलत सिद्ध कर दिया। स्वतंत्रता हिन्दू-मुस्लिम एकता के बिना मिली; मुसलमानों के अंग्रेजों के पक्ष में हो जाने और हिन्दुओं का विरोध करते रहने के बावजूद मिली।

परन्तु उस समय तो गाँधी गाँधी जी का बोलबाला था और वह महापुरुष जो वचन बोल देते थे, वह सही मान लिया जाता था।

गाँधी जी में दूरदृष्टि का अभाव था। वह केवल तात्कालिक लाभ को ही देख पाते थे, बाद में होने वाली हानियों को नहीं सोचते थे। मुसलमानों से प्रेम बढ़ाने के लिए उनके द्वारा खिलाफत आन्दोलन का समर्थन एक ऐसा ही कदम था।

खिलाफत आन्दोलन क्या था

प्रथम विश्व युद्ध से पहले तुर्की का बड़ा साम्राज्य था। तुर्की का सुल्तान सारे मुस्लिम जगत् का खलीफा, (पोप जैसा धर्मगुरु) माना जाता था। प्रथम विश्व युद्ध में तुर्की जर्मनी के साथ था और ये दोनों युद्ध में हार गये। जर्मनी को तो भारी क्षति उठानी ही पड़ी, तुर्की के सुल्तान से उसका खलीफा का पद छीन लिया गया। प्रबुद्ध तुर्की का नेता कमाल पाशा स्वयं खलीफा पद को समाप्त कर देना चाहता था। परन्तु भारत के मुसलमानों ने आन्दोलन किया कि खलीफा का पद समाप्त नहीं किया जाना चाहिए। यह आन्दोलन खिलाफत आन्दोलन कहलाया।

इसमें भारत बीच में कहाँ आता था? भारत के स्वाधीनता संग्राम से इसका दूर का या पास का क्या सम्बन्ध था? जब आर्य-समाज का शुद्धि आन्दोलन शुरु हुआ तब कांग्रेसी मुसलमानों ने ऐतराज़ किया कि शुद्धि आन्दोलन हिन्दू-मुस्लिम एकता में बाधक है। मुस्लिम मौलवी तबलीग (हिन्दुओं को मुसलमान बनाने) का आन्दोलन एकता में बाधक नहीं था। अब कि शुद्धि आन्दोलन बाधक था।

काँग्रेस ने एक समिति बनाई जो शुद्धि आन्दोलन के बारे में विचार करे और यह देखे कि मलकाने राजपूतों को दबाव

डाल कर तो हिन्दू नहीं बनाया जा रहा? क्या वे पूरी तरह स्वेच्छा से हिन्दू बन रहे हैं? जिन लोगों को अतीत में मृत्यु का भय दिखा कर मुसलमान बनाया गया था, उनके हिन्दू बनने के लिए पूर्ण स्वेच्छा की शर्त लगाई गई। इस समिति में पंडित मोतीलाल नेहरु, श्री चितरंजनदास, श्रीमती सरोजिनी नायडू, मौलाना अबुल कलाम आजाद आदि कई नेता थे। समिति ने यह माना कि मलकाने स्वेच्छा से हिन्दू बन रहे हैं। फिर भी उसने स्वामी श्रद्धानन्द जी को आदेश दिया कि वह शुद्धि के कार्य में भाग न लें और शुद्धि आन्दोलन एक वर्ष तक स्थगित कर दें।

स्वामी श्रद्धानन्द जी कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य थे और आर्यसमाज के भी बड़े नेता थे। काँग्रेस यह समझती थी कि स्वामी जी को काँग्रेस के अनुशासन में रहकर उसका आदेश मानना चाहिए। इस पर स्वामी जी ने काँग्रेस से सम्बन्ध तोड़ लिया। उनका मानना था कि काँग्रेस की मुस्लिमतुष्टीकरण नीति अन्यायपूर्ण है।

मलकाना की शुद्धि

शुद्धि का काम ज़ोरों से चलने लगा। 30-31 मई 1923 को राजपूतों का एक महासम्मेलन वृन्दावन में हुआ। 26 मई को कई सौ राजपूत नेताओं की एक सभा में यह निर्णय किया गया कि मलकानों को शुद्ध करके उनसे 'हुक्के का सम्बन्ध स्थापित किया जाए। सम्मेलन के प्रधान शाहपुर नरेश महाराजा नाहरसिंह जी थे। आर्यसमाज की ओर से स्वामी श्रद्धानन्द जी और महात्मा हंसराज के अलावा सनातन धर्म की ओर से पंडित गिरिधर शर्मा शुद्धि संस्कार के पुरोहित थे। संस्कार के अंग के रूप में एक विशाल प्रीतिभोज हुआ जिसमें शुद्ध हुए मलकानों ने अन्य प्रमुख राजपूतों के साथ बैठ कर भोजन किया।

उसके बाद शुद्धि का तूफान-सा आ गया। पश्चिमी उत्तरप्रदेश में जगह-जगह शुद्धि सम्मेलन होने लगे जिनमें मलकानों के गाँव के गाँव शुद्ध होकर आर्य बनने लगे। इस प्रकार लगभग 60 हजार मलकाने आर्य बन गये। और भी बनते, परन्तु काँग्रेस की शह पर मुसलमानों ने शुद्धि का विरोध शुरू कर दिया। गाँधी ने शुद्धि आन्दोलन की भर्त्सना की। स्वामी श्रद्धानन्द जी, महात्मा हंसराज तथा अन्य आर्य नेताओं को हत्या की धमकियाँ दी जाने लगीं। पहले तो आर्य नेताओं ने धमकियों की परवाह न करके शुद्धि का काम उत्साह से जारी रखा, परन्तु जब 23 दिसम्बर 1926 को अब्दुल रशीद ने रोग शय्या पर पड़े स्वामी श्रद्धानन्द जी को गोली मार कर शहीद कर दिया, तब शुद्धि का काम ठंडा पड़ गया।

काँग्रेसी हिन्दुओं की हठधर्मी

यदि काँग्रेस ने शुद्धि के काम में अड़ंगा न लगाया होता तो हिन्दू-मुस्लिम समस्या अत्यन्त प्रेमपूर्वक हल हो गई होती और देश का विभाजन न हुआ होता। उस समय अनगिनत मुसलमान यह अनुभव करते थे कि वे कुछ ही पीढ़ी पहले तो मुसलमान बने हैं इसलिए वे स्वेच्छा से अपने पूर्व धर्म में लौट आने को तैयार थे। परन्तु काँग्रेसी हिन्दू नेताओं की हठधर्मिता के कारण वह स्वर्ण अवसर हाथ से निकल गया। बाद में अंग्रेजी सरकार हर हथकंडा अपना कर हिन्दुओं और मुसलमानों को आपस में लड़ाने पर तुल गई और गाँधी-नेहरु गुट कुछ भी नहीं कर पाया। निर्लज्जतापूर्वक मातृभूमि का विभाजन स्वीकार कर लिया गया, बिना यह सोचे कि विभाजन से समस्याएँ समाप्त नहीं होंगी, अपितु शुरू होंगी।

संपादक

सांख्य दर्शन (अध्याय-1, सूत्र-112)

-डॉ. भारत भूषण विद्यालंकार

आत्मा चिन्मात्र है, यह सिद्धान्त लोक व्यवहार के विरुद्ध है। लोक में, मैं जानता हूँ।" अथवा "मैं ज्ञानवान् हूँ।" यह प्रतीति ज्ञान अर्थात् चेतन को आत्मा का धर्म बताती है। सूत्रकार अगले सूत्र में इसका समाधान करता है। सूत्र है:-

श्रुत्या सिद्धस्य नापलापस्तत्प्रत्यक्षबधात्।।112।।

अर्थ- (श्रुत्या) श्रुति (वेद) से (सिद्धस्य) सिद्ध की (अपलापः) उपेक्षा (न) नहीं (आत्मसाक्षात्कार हो जाने पर) (तत्प्रत्यक्षबाधात्) लौकिक प्रत्यक्ष की बाधा हो जाने से।

भावार्थ-'आत्मा चिन्मात्र है। यह सिद्धान्त न केवल युक्ति सिद्ध है अपितु श्रुति से भी सिद्ध है। इसलिए आत्मा के इस स्वरूप का अपलाप (उपेक्षा) नहीं किया जा सकता। उपनिषद् में-**"साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च"** साक्षी, चिन्मात्र और निर्गुण आत्मा का स्वरूप बताया गया है। लोक में जो साधारण प्रतीति होती है, वह अविवेक के कारण है। चिन्मात्र आत्म स्वरूप का साक्षात्कार हो जाने पर उस प्रकार के भ्रान्त प्रत्यक्ष की बाधा देखी जाती है। इस कारण लौकिक भ्रान्त प्रतीति के आधार पर वेद-प्रतिपादित आत्म स्वरूप की उपेक्षा करना असंगत होगा।

'तत्प्रत्यक्षबाधात्' में दो तरह से समास किया जा सकता है-

1. तेन आत्मसाक्षात्कारेण प्रत्यक्षस्य-लौकिक प्रत्यक्षस्य बाधात्; आत्म साक्षात्कार के द्वारा लौकिक प्रत्यक्ष की बाधा होने से इस समास के अनुसार उपर्युक्त अर्थ किया गया है।

2. समास का दूसरा प्रकार होगा - "तस्य लौकिक प्रत्यक्षस्य, प्रत्यक्षेण आत्मसाक्षात्कारेण बाधात्" अर्थात् "मैं ज्ञानवान हूँ" या "मैं जानता हूँ" इत्यादि लौकिक प्रतीति की आत्मसाक्षात्कार स्वरूप प्रत्यक्ष के द्वारा बाधा हो जाने से आत्मा चिन्मात्र है, यह स्पष्ट होता है। अभिप्राय यह है कि श्रुति द्वारा प्रतिपादित आत्मा का केवल चेतन स्वरूप या निर्गुण होना आत्मसाक्षात्कार से ही पुष्ट होता है।

दी हिबिस्कस,
बिल्डिंग-5, एपार्ट नं.-9बी
सेक्टर-50, गुड़गाँव (हरियाणा) 122009
फोन-0124-4948597

वेदों में विज्ञान के उद्घोषक : स्वामी दयानन्द

-डॉ. महावीर मीमांसक

वेद का विषय बहुत लम्बे समय से विवादास्पद रहा है। वेद के प्राचीन प्रामाणिक विद्वान् ऋषि आचार्य यास्क ने अपने वेदार्थ-पद्धति के पुरोधा ग्रन्थ निरुक्त में वेदार्थ के ज्ञाताओं की तीन पीढ़ियों का उल्लेख किया है। पहली पीढ़ी वेदार्थ ज्ञान की साक्षात् द्रष्टा थी जिसे वेदार्थ ज्ञान में किंचिन्मात्र भी सन्देह नहीं था। (साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः)। दूसरी पीढ़ी उन वैदिक विद्वानों की हुई जिन्हें वेदार्थ ज्ञान साक्षात् नहीं था। उन्होंने अपने से पुरानी ऋषियों की उस पीढ़ी से जो साक्षात्कृतधर्मा थी, उपदेश के द्वारा वेदार्थ ज्ञान प्राप्त किया। इस दूसरी पीढ़ी को भी वेदार्थ ज्ञान सर्वथा शुद्ध और अपने वास्तविक रूप में ही मिला। (ते पुनरवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुः।) और तीसरी पीढ़ी उन लोगों की आयी जो उपदेश के द्वारा भी वेदार्थ ज्ञान प्राप्त करने में असमर्थ थे। उन्होंने वेद वेदांग आदि ग्रन्थों का समाम्नान किया और उन ग्रन्थों की सहायता से वेदार्थ ज्ञान प्राप्त किया। **उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे इमं ग्रन्थं समाम्नासिषुर्वेदं च** वेदाङ्गानि च। इस तीसरी पीढ़ी को वेदार्थ ज्ञान साक्षात् रूप में नहीं हुआ अपितु परोक्ष रूप में प्राप्त हुआ। अतः इनका ज्ञान परतः प्रामाण्य ग्रन्थों पर आधारित था, वेद का स्वतः प्रामाण्य ज्ञान तो वेदांर्थ को साक्षात् वेद की अन्तःसाक्षी के आधार पर समझने वाले लोगों को था। फिर इन तीनों पीढ़ियों में समय का परस्पर अन्तराल बहुत था। और इस तीसरी पीढ़ी के बाद तो उत्तरवर्ती लोगों को वेद-वेदांग आदि ग्रन्थ जो वेदार्थ के लिये परतः प्रामाण्य ग्रन्थ हैं और भी अधिक दुरूह और समझ से दूर हो गये। यास्क के समय तक आते-आते यह परिणाम हुआ कि वेदार्थ अधिकतर ओझल हो गया। विद्वान् वेद का मनमाना अर्थ करने लगे। एक-एक मन्त्र का अर्थ करने की परम्परा 10,11 प्रकार की

चल पड़ी, यह स्वयं यास्क ने लिखा है, **"इति याज्ञिका, इति पौराणिका, इत्यैतिहासिकाः, इति वैयाकरणाः, इत्यन्ये, इत्यपरे, इत्येके"** इन शब्दों में यास्क ने अपने ग्रन्थ निरुक्त में एक मन्त्र की व्याख्या अनेक प्रकार से करने का ब्यौरा दिया है। परिणाम स्वरूप वेदार्थ इतना अनिश्चित विवादास्पद बन गया कि एक सम्प्रदाय वैदिक विद्वानों की इसी कमी का दुरुपयोग और लाभ उठाकर कहने लगा कि वेद जब इतने अस्पष्ट, विवादास्पद और अज्ञात हैं तो वेद के मन्त्र अनर्थक हैं, उनका कोई अर्थ नहीं है। (अनर्थकाः मन्त्रा इति कौत्सः)। यह वेदार्थ के अत्यन्त अन्धकार की स्थिति थी जो यास्क के समय तक थी।

यास्क सर्वप्रथम वैदिक विद्वान् थे जिनका लिखित ग्रन्थ न केवल यह कहता है कि वेद में भौतिक विज्ञान है, अपितु वेद की व्याख्या भी इस आधार पर करता है। यास्क ने अपने निरुक्त के प्रारम्भ में ही देवता शब्द की परिभाषा दी जो देवता वेद के प्रत्येक सूक्त या अध्याय के प्रारम्भ में दिये हुए होते हैं। **"यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन्त्स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद्दैवतः स मन्त्रो भवति"**। इस यास्कीय परिभाषा के अनुसार देवता उस सूक्त का वर्णनीय विषय होता है जो शीर्षक के रूप में प्रत्येक सूक्त या अध्याय के प्रारम्भ में वेद में दिया हुआ होता है ताकि पाठक को निश्चय रहे कि अमुक मंत्रों का वर्णनीय विषय अमुक है। यास्क ने समूचे वेदों के अध्याय के आधार पर यह निर्णय दिया कि सभी वैदिक मन्त्रों के देवता अर्थात् वर्णनीय विषय केवल तीन ही हैं, वे या तो पृथ्वी स्थानीय भौतिक विज्ञान अग्नि है, या अन्तरिक्ष-स्थानीय भौतिक विज्ञान इन्द्र, मेघ या विद्युत आदि हैं, या द्युस्थानीय भौतिक विज्ञान सूर्य हैं। द्र. तिस्र एव देवताः इत्यादि। **अग्निः पृथ्वीस्थानीय इन्द्रोऽन्तरिक्षस्थानीयः, सूर्यो द्युस्थानीयः**। समग्र विश्वमण्डल की सृष्टि (समष्टि) इन्हीं तीन भौतिक भागों में विभक्त है और वेद इसी समष्टि

के विज्ञान की व्याख्या है जिसमें आत्मा और परमात्मा चेतन तत्त्व भी समाहित हैं, अतः वेद के मन्त्रों के ये तीन ही विषय या देवता हैं। निरुक्तकार यास्क ने इस स्थापना के बाद वेद के सभी देवताओं को इन्हीं तीनों भागों में बाँटकर इनकी भौतिक वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की। ऋषि दयानन्द ने यास्क के इस तथ्य को पूर्णतः समझा। यद्यपि महाराजा जयपुर के राजपण्डित श्री मधुसूदन ओझा ने भी वेद में भौतिक विज्ञान की घोषणा की, किन्तु स्वामी दयानन्द के बाद और वह भी स्वामी जी के अनुकरण के रूप में उन्होंने ऐसा किया। फिर भी मधुसूदन ओझा जी के वेद भाष्य में विशुद्ध भौतिक विज्ञान न होकर पौराणिक मिथकों का सम्मिश्रण है जिसका ढोल उनके अनुगामी श्री मोतीराम शास्त्री और राजस्थान पत्रिका के सम्पादक श्री कुलिश जी पीट रहे हैं।

यास्क के बाद मध्यवर्ती काल में यह वैदिक विज्ञान लुप्त हो गया और आधुनिक काल में ऋषि दयानन्द ने इसे फिर से मूल मूल रूप में समझा। उन्होंने घोषणा की कि "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।" और इसमें समूचा भौतिक विज्ञान मौजूद है। उन्होंने सभी वेदों का भाष्य करने का बीड़ा उठाया और भूमिका के रूप में ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पुस्तक लिखी। इसमें उन्होंने न केवल यह घोषणा की अपितु स्थान-स्थान पर भौतिक विज्ञान के नमूने वेदमन्त्रों की व्याख्या करके प्रस्तुत किये। उन्होंने कहा कि आध्यात्मिक विज्ञान प्रथम कोटि का विज्ञान है और वेद में आत्मा और परमात्मा का भी विज्ञान है। भौतिक विज्ञान, बिना आध्यात्मिक विज्ञान के अधूरा, पंगु और अप्रासंगिक है। आधुनिक विज्ञान में यह उन्होंने नया अध्याय जोड़ा जो कोरे और नंगे भौतिक विज्ञान की पूर्ति की पराकष्ठा ही नहीं अपितु विज्ञानजन्य अनेक कमियों और समस्याओं का एकमात्र समाधान भी है। वेदान्त दर्शन में इसी का विस्तार

है। वायुयान विज्ञान, तार विज्ञान, विद्युत विज्ञान आदि अनेक भौतिक विज्ञानों के नमूने ऋषि दयानन्द ने वेदमन्त्रों की व्याख्या करके उस समय प्रस्तुत किये जब इन विज्ञानों का आधुनिक आविष्कार भी नहीं हुआ था। वेदों में भौतिक विज्ञान का उद्घोष ऋषि दयानन्द का आधुनिक युग का अद्वितीय नारा था। इसी उद्घोष के अनुसार स्वामी दयानन्द ने अपने वेदभाष्य में मंत्रों की व्याख्या अनेक स्थानों पर विज्ञानपरक की।

वेदों में विज्ञान के कुछ नमूने हम पेश करते हैं। ऋग्वेद का सर्वप्रथम प्रारम्भिक मंत्र है **"अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् होतारं रत्नधातमम्।"** इसी मन्त्र में ईळे क्रियावाची शब्द है। इसका अर्थ अन्य सभी वेद भाष्यकारों ने अशुद्ध किया है। स्वामी दयानन्द ने इसके वास्तविक अर्थ को निरुक्त के आधार पर किया है। यास्कीय निर्वचन पद्धति के आधार पर स्वामी दयानन्द ने वेदों में विज्ञान समझने में कैसे सम्बन्ध मिला होगा इसके लिये कुछ उदाहरण प्रस्तुत करता हूँ।

वेद में 'असुर' शब्द सूर्य के विशेषण के रूप में प्रयुक्त किया गया है, यथा "असुरत्वमेकम्" जिसका शाब्दिक अर्थ हुआ कि एकमात्र सूर्य ही असुर है। अब यहाँ 'असुर' शब्द का अर्थ बड़ा ही आपत्तिजनक और अनर्थक है जैसा कि साधारणतः समझा जाता है और आधुनिक भाष्यकारों ने किया भी है जिससे सूर्य असुर (राक्षस) बन गया। निरुक्त में यांस्क ने इस शब्द का अर्थ स्पष्ट किया, **"असुन् प्राणान् राति ददातीति असुरः"** अर्थात् असु यानि प्राणों के देने वाले को असुर कहते हैं। इससे स्पष्ट हुआ कि सूर्य वेद में असुर इसलिये कहा गया क्योंकि वह संसार में प्राणदायक शक्ति है। यही नहीं अपितु विश्व भर में यदि कोई मौलिक प्राणदायक शक्ति है तो वह केवल मात्र सूर्य है। यदि सूर्य नष्ट होता है तो विश्व के जीवन, प्राणी भी समाप्त हो

जायेंगे। यह भौतिक वैज्ञानिक तथ्य वेद में बड़े ही सहज भाव से कह दिया गया है। सूर्य से ही सब प्राणी वनस्पति आदि जीवित हैं।

दूसरा उदाहरण "वैश्वानर" शब्द का है। वैदिक शब्द 'वैश्वानर' का क्या अर्थ है? यह यास्क के समय बड़ा विवादास्पद बन गया था। अतः यास्क ने निरुक्त में प्रश्न उठाया 'अथ को वैश्वानरः? वैश्वानर अग्नि क्यों है? इसका समाधान भी यास्क ने इस शब्द की व्युत्पत्ति से किया है। **वैश्वानराज्जायते इति वैश्वानरः"** अर्थात् विश्वानर से पैदा होने वाले को वैश्वानरः कहते हैं। विश्वानरः का अर्थ है सूर्य। सूर्य से साक्षात् क्या वस्तु, कौन सी अग्नि उत्पन्न होती है? इसका परीक्षण यास्क ने वैज्ञानिक प्रयोग द्वारा किया। यास्क ने कहा कि एक आतिशी शीशे का एक भाग सूर्य की ओर रखो और उसके दूसरी तरफ से सूर्य की किरणों को गुजरने दो। जिधर सूर्य की किरणें गुजर रही हैं उधर किरणों के समक्ष सूखा गोबर (शुष्क गोमय) ऐसे रखो कि सूर्य की किरणें उस गोबर पर पड़ें। थोड़ी देर बाद उस गोबर से धुआँ उठेगा और आग पैदा हो जाएगी। यह अग्नि ही वैश्वानर है क्योंकि यह विश्वानर अर्थात् सूर्य से पैदा होती है। इस प्रकार यास्क ने यह भौतिक वैज्ञानिक तथ्य स्थिर किया कि समूची पार्थिव अग्नि वैश्वानर है क्योंकि यह सूर्य से पैदा होती है। यही आज की सौर ऊर्जा है जिसे आज के वैज्ञानिक अपनी बंहुत बड़ी उपलब्धि मानते हैं। यही तथ्य यजुर्वेद के प्रथम मंत्र में ही कह दिया गया जिसका देवता सविता है- "इषे त्वोर्ज्जे त्वा" अर्थात् हे सूर्य हम तेरा उपयोग ऊर्जा शक्ति की प्राप्ति के लिए करें।

ये भौतिक वैज्ञानिक तथ्य ब्राह्मण ग्रन्थों और पूर्व मीमांसा के याज्ञिक दर्शन में भी भरे पड़े हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में कहा गया है "अग्नीषोमीयमिदं जगत्" यह संसार अग्नि और सोम दो भौतिक शक्तियों से निर्मित है। यही अग्नि और सोम आज

की ऋणात्मक और धनात्मक, सकारात्मक और नकारात्मक शक्तियाँ हैं। यही वे दो धुरी हैं जिन पर आज का कम्प्यूटर विज्ञान केन्द्रित हैं, जिसका आधार (बाइनरी सिस्टम) द्विधुरीय पद्धति है। पूर्व मीमांसा का समग्र यज्ञ-विज्ञान इसी दर्शन पर आधारित हैं, उदाहरणार्थ वर्षा की आवश्यकता होने पर वर्षा करवाने के लिए वर्षेष्टि याग, जो इसी वैज्ञानिक ज्ञान पर आधारित है कि वर्षा करवाने वाली भौतिक शक्तियों को कैसे वृष्टि-अनुकूल वातावरण पैदा करने के लिए यज्ञ द्वारा आवर्जित किया जाये।

भारत के कृषि-प्रधान देश होने के कारण अतिवृष्टि और अनावृष्टि की समस्या जो कृषि को एकदम सीधे विनाशकारी रूप से प्रभावित करती है, का समाधान ढूँढने के लिए बड़ी वैज्ञानिक खोजें प्राचीन काल में हुई थीं। इन्हीं समस्याओं का समाधान, वृष्टियाग है जो आज भी देश की आर्थिक दशा जिसका आधार कृषि है, को सुधारने के लिये अत्यन्त उपयोगी और प्रासंगिक है। वेद में इसीलिए एक पूरा सूक्त कृषि सूक्त है। प्राचीनकाल में कृषि विज्ञान पर भारत से बढ़ कर वैज्ञानिक खोज और किसी देश में नहीं हुई। कौटिल्यार्थशास्त्र इसी के विस्तार से भरा पड़ा है। आज तो इसके साथ पर्यावरण की समस्या भी जुड़ गई है जो कृषि और छोटे वृक्षों को नष्ट करने तथा यज्ञ-याग आदि के अभाव के कारण पैदा हुई है। यज्ञ विज्ञान पर हौलेण्ड में दिये अपने व्याख्यानों को हम अलग से प्रकाशित करेंगे।

इसी प्रकार अन्य याग हैं जो भौतिक पदार्थों की प्राप्ति के लिये की गई कामनाओं की पूर्ति के निमित्त किये जाते हैं। इसीलिए पूर्व मीमांसा में महर्षि जैमिनि ने यज्ञ की परिभाषा दी है "देवतोद्देश्येन द्रव्यत्यागः यागः।'

वैदिक शोध सदन,
ए-3/11, पश्चिमी विहार,
दिल्ली-110063

सर्वत्र विजयी कैसे हों?

–महात्मा चैतन्यमुनि

यह मानव का स्वभाव है कि वह कहीं भी किसी दशा में भी पराजित नहीं होना चाहता बल्कि वह विजय ही प्राप्त करना चाहता है। विजय प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को तद्वत् गुणों से परिपूर्ण होना अपेक्षित है। वेद कहता है- **स जातो गर्भोऽसि रोदस्योरग्ने चारुर्विभृतऽओषधीषु। चित्रः शिशुः परि तमाँस्यक्तून् प्र मातृभ्योऽअधिकनिक्रदद् गाः।।** (यजु.11-43) मन्त्र में कहा गया कि **(जातः)** सदा से प्रसिद्ध वा प्रादुर्भूत **(सः)** वह आप **(रोदस्योः)** द्युलोक व पृथिबीलोक अर्थात् पूरे ब्रह्माण्ड के **(गर्भः)** गर्भ हो। आपने सारे ब्रह्माण्ड को अपने एक देश में धारण किया हुआ है। हे **(अग्ने)**अग्ने! हमारी उन्नतियों के साधक प्रभो! **(चारुः)** आप सुन्दर ही सुन्दर हो अथवा संसार को गति देने वाले हो। **(ओषधीषु)** दोषों का दहन करने वाली इन ओषधियों व वनस्पतियों के होने पर **(विभृतः)** विशेषरूप से धारण किए हुए हो.....अर्थात् जब कोई भक्त सात्विक भोजन से अपने अन्तःकरण को पवित्र करता है तो आप उसके हृदय में आविर्भूत होते हो। उन हृदयों में रहते हुए आप **(चित्रः)** संज्ञान देने वाले हैं। **(शिशुः)** उस भक्त की बुद्धि को आप बहुत सूक्ष्म बनाते हो। **(तमांसि परि)** अन्धकारों को दूर करते हो, **(अक्तून् प्र)** ज्ञान की रश्मियों को प्रकर्षेण प्राप्त कराते हो, **(मातृभ्यः)** प्रत्येक कार्य को माप-तोलकर करने वाले के लिए अथवा ज्ञान का निर्माण करने वालों के लिए वेदवाणियों को **(अधिकनिक्रदत्)** अधिक्येन उच्चारण करते हो। मन्त्र में कहा गया है कि जो व्यक्ति सात्विक आहारादि के द्वारा अपने अन्तःकरण को पवित्र करता है वह प्रभु द्वारा दिए ज्ञान को अपने निर्दोष अन्तःकरण से अनुभूत करता है, उसकी बुद्धि सूक्ष्म हो जाती है, वह समस्त अन्धकारों से दूर हो जाता है, वह समस्त ज्ञान-रश्मियों को प्राप्त करता है, तथा उसकी समस्त क्रियाएँ

बहुत ही नपी-तुली होती हैं। निश्चित् ही जिस व्यक्ति में उपरोक्त गुण होंगे, उसकी पराजय का तो प्रश्न ही पैदा नहीं होता। अगले मन्त्र में विजयी होने के लिए प्रार्थना की है। **स्थिरो भव वीडवङ्गऽआशुर्भव वाज्यर्वन्। पृथुर्भव सुषदस्त्वमग्नेः पुरीषवाहणः।।** (यजु.11-44) पहली बात कही कि (**स्थिरो भव**) तू चंचलता को छोड़कर स्थिर हो। चंचल-स्वभाव का व्यक्ति कभी भी किसी भी क्षेत्र में सफल नहीं हो सकता है। क्योंकि किसी भी कार्य को सफलता प्रदान करने के लिए निरन्तरता बहुत आवश्यक है। बहुत काल तक जो व्यक्ति संघर्षरत रहेगा उसी के सिर विजय का सेहरा बँधता है, पलायनवादी के नहीं.... दूसरी बात कही कि तू (**वीड्वंगः**) दृढ़ अंगों वाला हो। शरीर परमात्मा की दी हुई एक अत्यधिक मूल्यवान तथा अद्भुत वस्तु है। यह एक ऐसा रथ है जो हमें हमारे गन्तव्य स्थान तक पहुँचाएगा। इस अद्भुत रथ के सम्बन्ध में वेद कहता है- **सप्त युंजन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा। त्रिनाभि चक्रमजरमनर्व यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः।।इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः। सप्त स्वसारो अभि सं नवन्तं यत्र गवां निहिता सप्त नामा।।** (अथर्व.9-9-2,3) यह शरीर-रूपी रथ अद्भुत है, यह सब लोकों का अधिष्ठान है और समस्त देवता इसमें उपस्थित हैं। इस शरीर-रथ में सात ऋषियों की स्थिति है। सात चक्रों वाले इस शरीर रथ को सात इन्द्रियाश्व धारण करते हैं। सात प्राण इसे सदा नया बनाए रखते हैं। इसमें सात धातुओं का स्थापन हुआ है। ऐसे दिव्य रथ को गन्तव्य स्थान तक पहुँचने तक स्वस्थ व नीरोग बनाए रखना हमारा नैतिक दायित्व बनता है.... तीसरी बात कही कि (**आशुःभव**) कर्मों में सदा व्याप्तिवाला हो, आलस्य छोड़कर सदा कर्मशील बन। आलसी और प्रमादी व्यक्ति जीवन में कुछ भी नहीं कर पाता है। इसलिए वेद में कहा कि विजय प्राप्त करने के लिए स्वयं

को कर्मठता के साथ जोड़ना चाहिए। क्योंकि तप का कारण भी कर्म ही है-**तपचैवास्तां कर्म चान्तर्महत्यर्णवे। तपो ह जज्ञे कर्मणस्तत्ते ज्येष्ठमुपासत।।** (अथर्व.11-8-6) तप और इसी प्रकार कर्म महान् संसार सागर के अन्दर थे। तप निश्चय करके कर्म से प्रादुर्भूत हुआ, उन्होंने उस कर्म की ज्येष्ठ रूप से उपासना की। मन्त्र में कर्म को तप से श्रेष्ठ इसलिए बताया गया है क्योंकि असंकल्पशील एवं आलसी मनुष्य कभी तपस्वी नहीं बन सकता मगर कर्मयोगी स्वतः तपस्वी बन जाता है।

चौथी बात कही कि **(वाजी)** तू शक्तिशाली हो। ढीले-ढाले मन से किया गया कार्य भी सफल नहीं होता इसलिए पूरी शक्ति के साथ कार्य को करना चाहिए। सफलता प्राप्त करने के लिए केवल शारीरिक-शक्ति ही पर्याप्त नहीं बल्कि मानसिक और आत्मिक-शक्ति भी आवश्यक है। पाँचवीं बात कही कि **(अर्वन्)** (अर्व हिंसायाम्) तू मार्ग में आने वाले विघ्नों को दूर करने वाला बन। संसार में ऐसा कोई व्यक्ति आपको नहीं मिलेगा जिसके जीवन में बाधाएँ न आई हों। ये बाधाएँ बाहर की भी होती हैं और भीतर की भी। इन बाधाओं को निरन्तर दूर करते रहना आवश्यक है अन्यथा कोई एक बुराई भी हमें जीवन-संघर्ष में पराजित करवा सकती है।

छठी बात कही कि **(पृथुर्भव)** तू विशाल हृदय वाला बन। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और उसकी श्रेष्ठता इसी में है कि वह स्वयं अपने आपको तथा अपनों को तो प्रेम करे ही मगर संसार के समस्त प्राणियों के प्रति उसके हृदय में विशालता व प्रेम की भावना होनी चाहिए। सामाजिक समरसता और उन्नति का आधार बैर-विरोध नहीं बल्कि प्रेम ही हो सकता है। हिंसा की भावना से हिंसा का ही विस्तार होता है मगर प्रेम से प्रेम का वातावरण बनता है। हिंसा किसी प्रकार से भी सुखदायक नहीं हो सकती। हिंसा से किसी भी समस्या

का समाधान भी नहीं निकल पाता। अन्ततः किसी भी प्रकार के झगड़े का समाधान आपसी समझ और प्रेम के आधार पर ही निकाला जा सकता है इसलिए व्यक्ति को विशाल हृदय वाला होना चाहिए। परमात्मा का आदेश(यजु.36-18) है- **'मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।'** अर्थात् हम सब एक-दूसरे को मित्र की-प्रेम की दृष्टि से देखें। यही दृष्टि श्रेष्ठता की प्रतीक है.....

सातवीं बात कही कि **(सुषदः)** उत्तमता से घर में बैठनेवाला बन अर्थात् सदा ही उत्तम कार्यों में लगा रह और उत्तम विचारों के संग रह। यह सिद्धान्त-सिद्ध बात है कि जीवात्मा कर्म करने में स्वतन्त्र और कर्म का फल भोगने में परतन्त्र है। यदि इस बात को हम गहराई से समझें तो मानो परमात्मा ने हमें सर्वाधिकार दे रखे हैं। जब यह बात स्पष्ट हो गई कि मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है तो उसे उत्तम कर्म ही करने चाहिए। वेद प्रेरणा देता है-**देवस्य सवितुः सर्वे कर्म कृण्वन्तु मानुषाः।** (अथर्व.6-23-3) सब मनुष्यों को चाहिए कि वे दिव्यगुणों वाले तथा जगदुत्पादक प्रभु की आज्ञानुसार ही कर्म करें। क्योंकि इसी से हमें दिव्यगुणों की प्राप्ति होगी-**इच्छन्ति देवाः सुन्वतं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति। यन्ति प्रमादमतन्द्राः।।** (अथर्व.20-18-3) देव लोग दिव्यगुण, सामयाग आदि श्रेष्ठ कर्मो के करने वाले को चाहते हैं। वे दिव्य गुण स्वप्नशील अर्थात् आलसी मनुष्य को नहीं चाहते। निद्रा और तन्द्रा से भिन्न मन में उत्तम कर्म करने की भावना होगी तो हम तदनुसार परिश्रम भी करेंगे ही.......और फिर अन्त में मन्त्र में कहा गया कि जब व्यक्ति उपरोक्त गुणों से समन्वित होकर संसार के कर्मक्षेत्र में उतरेगा। तो **(त्वम् अग्नेः पुरीषवाहणः)** वह तू एक अग्रणी नेता बन जाएगा अर्थात् उसकी सर्वत्र विजय ही होगी.....

महर्षि दयानन्द धाम, महादेव,
सुन्दरनगर-174401, (हि.प्र.)

हिन्दुत्व बहुत पावरफुल कल्चर है

–डेविड फ्रॉली, अमेरिकी वैदिक टीचर

[पद्म भूषण से सम्मानित अमेरिकी वैदिक टीचर डेविड फ्रॉली भारत में पंडित वामदेव शास्त्री के नाम से भी जाने जाते हैं। उनके पास योग और वैदिक साइंस में डी–लिट. की उपाधि है। वह वेद, हिन्दुत्व, योग, आयुर्वेद और वैदिक एस्ट्रोलजी पर कई किताबें लिख चुके हैं। ट्रिपल तलाक और यूनिफॉर्म सिविल कोड जैसे मुद्दों पर देश में चल रही बहस को लेकर वह काफी चिंतित हैं। वह कहते हैं कि भारत संवैधानिक व्याख्या के मुताबिक खुद के सेकुलर होने की घोषणा तो करता है लेकिन असल में यहाँ कोई यूनिफॉर्म सिविल कोड नहीं है। वह संविधान से सोशलिस्ट शब्द हटाने की भी वकालत करते हैं।] डेविड फ्रॉली से सेकुलरिजम, हिंदुत्व और ट्रिपल, तलाक सहित कई मुद्दों पर बात की पूनम पाण्डे ने–

आपने लिखा है कि हिन्दुत्व के खिलाफ कल्चरल वॉर चल रहा है, क्या हिन्दुत्व खतरे में है?

हिन्दुत्व के खिलाफ कल्चरल वॉर इसलिए चल रहा है क्योंकि यह एक बहुत पावरफुल कल्चर है। भारत में बहुत सारी हिंदू एक्टिविटीज और प्रैक्टिस की मीडिया और एकेडमीशियन आलोचना कर रहे हैं। यहाँ तक कि कोर्ट भी ऐसा कर रहे हैं। भारत का सुप्रीमकोर्ट बिना किसी केस के हिंदू परंपरा–हिंदू प्रैक्टिस के खिलाफ जजमेंट दे रहा है। अदालत ईसाई या इस्लाम पंरपरा के खिलाफ ऐसा नहीं कर रहे। हम देख रहे हैं कि हिंदुत्व के बारे में जो जानकारी आ रही है वह गैरहिंदुओं जैसे मार्क्सवादियों से, ईसाइयों से और यहाँ तक कि अमेरिका से आ रही है। यूएस में कई रिलीजियस डिपार्टमेंट है, उसमें जो दूसरे रिलीजियस डिपार्टमेंट हैं उनमें आम तौर पर उसी रिलिजन के लोग हैं जो पढ़ा रहे हैं। पर हिन्दू डिपार्टमेंट में शायद ही कोई हिन्दू है।

आपने कोर्ट पर सवाल उठाया, क्या कोर्ट को नहीं बोलना चाहिए?

`कौन–सी धार्मिक परंपरा सही है और किस पर बैन होना

चाहिए-यह कोर्ट का विषय नहीं है। हैरानी है कि जो अदालत जल्लीकट्टू या दहीहाँडी पर फैसला देती है, वही दूसरे मजहब के मसलों पर कुछ नहीं बोलती।

कोर्ट नहीं तो कौन बोलेगा? कई ऐसी परंपरा और प्रैक्टिस में लोग मरते हैं?

लोग तो क्रिसमस ट्री में आग लगाने से भी मरते हैं तो क्या उसे बैन कर देंगे। बैन की बजाय ज्यादा सेफ्टी के इंतजाम होने चाहिए। लोग भगदड़ में मरते हैं तो क्या धार्मिक जमावड़े को बैन कर देंगे? जरूरी यह है कि ऐसे मामलों को धार्मिक समुदाय या पंथ खुद ही रेगूलेट करें और तय करें कि उनसे कोई नुकसान न हो। मीडिया तब सवाल नहीं उठाता जब हिंदू एक्टिविस्टों पर, आरएसएस कार्यकर्ताओं पर हमले होते हैं लेकिन जब मामला गैर-हिंदुओं का हो, तो वह नैशनल न्यूज बन जाती है।

ऐसा क्यों है, जबकि भारत में हिंदू बहुसंख्यक है?

हिंदू बहुसंख्यक जरूर है लेकिन नेहरू के समय से सरकार ने ज्यादा लेफ्टिस्ट पॉलिसी अपनाई। अगर हम भारत के स्कूलों में पढ़ाए जाने वाले इतिहास की किताबें देखें तो प्राचीन भारत पर जो भी लिखा है, यह सब कम्युनिस्टों ने लिखा है। इतिहास को पॉलिटिकल अजेंडे के लिए तोड़-मरोड़ कर पेश किया गया है।

तो क्या नेहरु ने हिंदू कल्चर को नुकसान पहुँचाया?

कुछ हद तक। नेहरू ने ब्रिटिश कल्चर को फॉलो किया, वह रिलीजियस नहीं थे। वह अलग तरह का भारत बनाना चाहते थे। कई मामलों में वह गाँधी से अलग थे। जो नेहरू ने किया वह इंदिरा ने भी किया। जेएनयू को देखिए। वहाँ आप हिंदुत्व पढ़ नहीं सकते, योग की भी वहाँ इजाजत नहीं है। वह लेफ्टिस्ट ओरिएंटेड ऑर्गनाइजेशन बना है। दुनिया में चीन को छोड़कर भारत ही अकेला ऐसा देश रहा है जहाँ कम्युनिस्ट स्टूडेंट यूनियन है। यूएस में कम्युनिस्ट स्टूडेंट यूनियन बैन हैं।

सभी विचारधाराओं की स्टूडेंट यूनियंस का होना तो फ्रीडम ऑफ एक्सप्रेशन है?

नहीं। यह फ्रीडम ऑफ एक्सप्रेशन नहीं है। ऐसे लोग दूसरों की विचारधारा को सामने नहीं आने देना चाहते। हायर एजुकेशन इंस्टीट्यूट में सरकार को कोसना फ्रीडम ऑफ एक्सप्रेशन नहीं है। वहाँ बहुत से स्टूडेंट्स महज विरोध के लिए जाते हैं, पढ़ने के लिए नहीं। फ्रीडम ऑफ एक्सप्रेशन को अराजकता को प्रमोट करने के लाइसेंस के तौर पर इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। भारत ने कुछ फनी (विचित्र) चीजें की है। जैसे बहुसंख्यक यानी हिन्दू इंस्टीट्यूशन में रिलीजन के बारे में बात तक नहीं की जाती जबकि माइनॉरिटी इंस्टीट्यूशन जो चाहें, पढ़ा सकते हैं। भारत में ज्यादा मदरसे हैं जो फंडामेंटल इस्लाम पढ़ा रहे हैं। वेस्ट देशों में सेकुलरिजम का मतलब है कि किसी भी रिलीजन को अहमियत न देना। लेकिन भारत में पूरा सपोर्ट मॉइनॉरिटी रिलीजन को दिया जाता है। अमेरिका में मॉइनॉरिटी या मेजॉरिटी किसी भी रिलीजन को अलग से कोई फायदा नहीं दिया जाता है। सब को बराबर समझा जाता है।

यानी भारत ने सेकुलरिज्म को सही से डिफाइन नहीं किया है?

सही ढंग से डिफाइन ही नहीं किया, बल्कि इसका दुरुपयोग भी हुआ हैं जैसे गाँधी को भारत में सेकुलर फिगर के तौर पर सम्मान दिया जाता है लेकिन वेस्ट में उन्हें रिलीजियस फिगर के तौर पर सम्मान दिया जाता है।

तो क्या भारत में सेकुलरिज्म को रि-डिफाइन करने की जरूरत है?

हाँ। साथ ही यह समझने की भी जरूरत है कि वेस्ट में सेकुलरिज्म को कैसे देखा जाता है। जैसे भारत सेकुलर होने की बात कहता है लेकिन यहाँ कोई यूनिफॉर्म सिविल कोड नहीं है। वेस्ट के सभी सेकुलर देशों में एक यूनिफॉर्म लीगल सिस्टम है। भारत का संविधान कहता है कि यह सेकुलर सोशलिस्ट रिपब्लिक है, लेकिन किसी भी वेस्ट के देश का संविधान यह नहीं कहता। भारत में सोशलिस्ट को हटा देना चाहिए। सोशलिज्म को हटा देना चाहिए। सोशलिज्म दुनिया भर में असफल रहा। इंडिया में लेफ्ट और राइट भी बहुत

फनी चीज है। जैसे मैं वेजिटेरियन हूँ, योग करता हूँ, आयुर्वेद सिखाता हूँ। ये अमेरिका में लेफ्ट विंग सब्जेक्ट है और यहाँ भारत में मैं राइट विंग का कह दिया जाऊँगा।

कुछ संगठन कहते हैं कि हिंदुत्व इज अ वे ऑफ लाइफ, यानी जीने का तरीका है, आप क्या मानते है?

मैं ऐसा नहीं मानता। हम वेस्ट के हिसाब से हिंदुत्व को डिफाइन नहीं कर सकते। वेस्ट में रिलीजन मतलब गॉड है, फेथ है। यह ईस्ट के रिलीजियस ट्रेडिशन से मेल नहीं खाता। अगर हम कहें हिन्दुत्व रिलिजियस है तो यह कहा जाएगा कि फिर इसे ईसाइयत और इस्लाम की तरह होना चाहिए जो यह नहीं है। अगर कहें कि यह रिलिजन नहीं बल्कि वे ऑफ लाइफ है, तब कहा जाएगा कि इसका मतलब हिन्दुत्व का आध्यात्मिकता से कोई मतलब नहीं। लेकिन ऐसा नहीं है। धर्म एक लॉ ऑफ नेचर है। इसलिए हिन्दुत्व रिलिजन से काफी ज्यादा है।

लेकिन हिन्दुओं में कास्ट सिस्टम देखें, क्या यह एक बड़ी बुराई नहीं है?

कास्ट सिस्टम सोशल स्ट्रक्चर का पार्ट है। लेकिन कई हिन्दू ग्रुप हैं जिनमें कास्ट नहीं है। कास्ट सिस्टम में दिक्कतें हैं जिन्हें बदलना चाहिए। यूएस और यूरोप में ईसाइयत में भी बुराई है जैसे ईसाइयत में गुलाम बनाने की प्रथा है।

बीजेपी भी तो दलितों को वोट बैंक के तौर पर देख रही है?

हर कोई दलितों को अड्रेस कर रहा है। पर अहम यह हैं कि उनके लिए कुछ तो करो। पुरानी सरकारों ने दलितों के लिए कुछ नहीं किया।

बीजेपी पर तो एंटी दलित पार्टी होने का आरोप लग रहा है?

बीजेपी एंटी दलित नहीं है। वे अंबेडकर को सेलिब्रेट करते हैं। मोदी खुद बैकवर्ड क्लास से आते हैं। काँग्रेस के ज्यादातर लोगों की तरह नहीं, जो हायर कास्ट और रिच फैमिली बैकग्राउंड से हैं।

पर दादरी की घटना के बाद मोदी चुप भी तो रहे?

किसी एक मौत पर पीएम स्टेटमेंट नहीं देते। अमेरिका में भी

ऐसा ही होता है।

कुछ खाने या न खाने का अधिकार सबका है, पर बीफ को लेकर अटैक?

बहुत कम है जो अटैक की बात करते हैं। लोग बीफ खाने के खिलाफ बात करते हैं इसका मतलब यह नहीं कि वे बीफ खाने वालों पर अटैक को प्रमोट कर रहे है। वेजिटेरियंस पर भी कई देशों में हमले होते हैं।

इन दिनों ट्रिपल तलाक पर बहस चल रही है, आपकी राय?

भारत इस्लामिक स्टेट नहीं है। ज्यादातर इस्लामिक स्टेट ट्रिपल तलाक को छोड़ चुके हैं। अमेरिका में भी इसकी इजाजत नहीं है। अगर आप भारत को सेकुलर, मॉडर्न स्टेट बनाना चाहते है तो यूनिफॉर्म सिविल कोड की जरूरत है। महिलाओं को अधिकार देने की भी बात है।

हिन्दुत्व के लिए बड़ा खतरा क्या है, ईसाइयत या इस्लाम?

हालांकि हर रिलिजन में अच्छे लोग भी हैं, पर ईसाइयत की यह योजना है कि वह भारत को कन्वर्ट कर दे। पूर्व पोप ने भी यही कहा। वे पैसा लगा रहे हैं इसमें। इस्लाम भी कन्वर्जन को प्रमोट कर रहा हैं, जाकिर नाइक जैसे लोग ऐसा कर रहे हैं। इस्लाम के लोग जिहादी अटैक कर रहे हैं। हिंदुओं को इस खतरे से आगाह रहना होगा।

पर महिलाओं को तो हिन्दू भी कई मंदिरों में नहीं जाने देते?

कई मंदिरों में महिलाएँ जाती है। महिलाओं के लिए अलग से भी कुछ मंदिर हैं, कुछ पुरुषों के लिए हैं इसी तरह कुछ स्पेशल स्कूल महिलाओं के लिए हैं कुछ पुरुष के लिए। क्या पुरुषों को महिलाओं के लिए बने स्कूल में जाना चाहिए और महिलाओं को पुरुषों के स्पेशल स्कूल में? कैथलिक में महिलाएँ प्रीस्ट नहीं हो सकती। हालांकि मैं रिलीजन और अध्यात्म को महिलाओं के लिए ज्यादा सकारात्मक बनाने के पक्ष में हूँ। अकेले हिन्दू परंपरा में ही देवियों की पूजा होती है। ईसाइयत में मदर मेरी यूनिवर्स की मदर नहीं है, वह महज जीजस की ही मदर हैं। उनके पास डिवाइन मदर नहीं है। इस्लाम में भी ऐसा कोई व्यक्तितत्व नहीं है।

भारतीय संस्कृति के प्राण तत्त्व

–प्रो. भवानीलाल भारतीय

'संस्कृति' शब्द का प्राचीनतम उल्लेख यजुर्वेद में मिलता है जहाँ संस्कृति को 'विश्ववारा' अर्थात् समस्त विश्व में परिव्याप्त बताया गया है– **सा संस्कृति प्रथमा विश्ववारा।** इस प्राचीनतम वैदिक या आर्य संस्कृति का जन्म और विकास आर्यावर्त के सप्त–सिन्धु प्रदेश में हुआ जहाँ वितस्ता, विपाशा, सिन्धु, गंगा, यमुना आदि नदियों के तटवर्ती आश्रमों के निवासी वसिष्ठ, विश्वामित्र, अत्रि, कामदेव, मधुच्छन्दा आदि ऋषियों ने वेदमंत्रों के रहस्यों का दर्शन कर संसार के सभी भागों में उन्हें लोकहितार्थ प्रचारित किया। वस्तुतः मानव जाति को सभ्यता, संस्कृति तथा मानवता का पाठ पढ़ाने वाला भारतवर्ष ही था जिसका संकेत महाकवि जयशंकर प्रसाद ने निम्न पंक्तियों में किया है–

हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे. उपहार।
ऊषा ने हँस अभिनन्दन किया और पहनाया हीरक हार।।
जगे हम, लगे जगाने, विश्व में फैला आलोक।
व्योमतम पुञ्ज हुआ तब नाश अखिल संस्कृति हो उठी अशोक।।

संसार के विभिन्न मानव समूहों को आचरण और चरित्र की शिक्षा देने वाला यह आर्यावर्त देश ही था, इसकी घोषणा मानव जाति के प्रथम विधि–निर्माता भगवान मनु ने की है–

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः।।

इसी भारतखण्ड देश में उत्पन्न अग्रजन्मा ब्राह्मणों के चरणों में बैठकर समग्र मानव जाति ने चरित्र की शिक्षा ली है। प्रोफेसर मैक्समूलर जैसे प्राच्य विद्याविद् ने उक्त तथ्य को प्रमाणित करते हुए लिखा था– "इस बात का पता लगाने के लिए कि सर्वविध सम्पदा और सौन्दर्य से परिपूर्ण ऐसा कौन–सा देश है तो मैं बताऊँगा कि वह देश है भारत, जहाँ भूतल पर ही स्वर्ग की छटा निखर रही है। यदि आप यह जानना चाहें कि मानव मस्तिष्क की उत्कृष्टतम उपलब्धियों का सर्वप्रथम साक्षात्कार किस देश ने किया है और किसने जीवन की सबसे बड़ी

समस्याओं पर विचार कर उनमें से कइयों के ऐसे समाधान ढूँढ निकाले हैं कि प्लेटो और काण्ट जैसे दार्शनिकों का अध्ययन करने वाले हम यूरोपियन लोगों के लिए भी वे मनन के योग्य हैं तो यहाँ भी मैं भारत का नाम लूँगा।"

वेदों को भारतीय संस्कृति का प्राणतत्त्व घोषित करते हुए उक्त एक जर्मन प्रोफेसर ने कहा था- "वैदिक कवि ही आदिम मानव थे, वैदिक भाषा ही आदि भाषा है, वैदिक धर्म ही आदि धर्म है। कुल मिलाकर यह माना जा सकता है कि मानव जाति के सम्पूर्ण इतिहास में हमें जो श्रेष्ठ तत्त्व मिल सकता है, वह वेदों की ऋचाएँ तथा वेद प्रतिपादित धर्म है। उन्नीसवीं शताब्दी में भारत की एक फ्रैंच बस्ती चन्द्रनगर के न्यायाधीश लुई जाकोल्यो (1837-1890) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक भारत में बाइबिल (ला बाइबिल डेन्सलैण्ड एल इन्डे) में भारत को मानव सभ्यता का प्रथम प्रवर्तक बताया तथा अनेक ऐतिहासिक प्रमाण देकर इस तथ्य को पुष्ट किया कि मध्य एशिया तथा यूरोप के देशों को सभ्य बनाने में भारत के ऋषि-मुनियों की शिक्षाओं ने कितना प्रभावी योगदान किया है। जब मुगलशाह शाहजादे दाराशिकोह का किया उपनिषदों का फारसी अनुवाद सिर्रे-अकबर (महान् ज्ञान) यूरोप के चिन्तकों तक पहुँचा तो उनके विस्मय और आनन्द का पार नहीं रहा। जर्मन दार्शनिक शॉपनहार ने इनका अध्ययन कर कहा कि संसार का श्रेष्ठतम आध्यात्मिक ज्ञान इन उपनिषद्-संज्ञक ग्रन्थों में संगृहीत है। इनके अध्ययन ने मुझे इस जन्म में शान्ति प्रदान की है और मेरा विश्वास है कि मेरे मरणोत्तर जीवन में भी यही ज्ञान मुझे आत्मिक शान्ति प्रदान करेगा।

वस्तुतः शासक वर्ग के विदेशियों ने एक मिथ प्रचारित किया था कि पाश्चात्य जातियों के आगमन से पहले भारत अज्ञानान्धकार में आपूरित, नाना अन्ध विश्वासों तथा रूढ़ियों से ग्रस्त तथा ज्ञान की रश्मियों से सर्वथा अपरिचित था। वे दम्भपूर्वक यह भी कहते थे कि कदाचित् यूरोपीय चिन्तन से

भारत के प्रबुद्ध वर्ग का संस्पर्श नहीं होता तो यहाँ के लोग आने वाले कल तक मध्यकालीन अन्धधारणाओं से आबद्ध रहते। प्रसिद्ध पत्रकार पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने ऐसी अहम्मन्यता में चूर गौरांगों के दम्भ का दलन करने वाले एक संस्मरण को भारतभक्त सी.एफ. एण्ड्रूज की जीवनी में लिखा है-

आगरा कॉलेज का एक अंग्रेजी प्रोफेसर छात्रों को जीव विज्ञान पढ़ा रहा था। वह छात्रावास का वार्डन भी था। अतः उसे हिन्दुस्तानी छात्रों के सम्पर्क में आने का अवसर प्रायः मिलता रहता था। यों तो वह इंग्लैण्ड के एक गरीब परिवार का था किन्तु भारत के इस प्रसिद्ध कालेज में उसे जब 600/- रुपया मासिक वेतन उस जमाने में मिलने लगा तो वह अपने बचपन की गरीबी भूल गया। एक दिन कक्षा में उसे अपनी अंग्रेज जाति के कथित गौरव तथा वर्चस्व का ख्याल आया तो उसने क्लास में कहा- "अगर अंग्रेज, लोग भारत में दो हजार साल पहले आये होते तो यहाँ के लोगों की सभ्यता और नैतिकता का स्तर बहुत पहले ही सुधर गया होता।"

उसकी इस मिथ्या गर्वोक्ति को सुनकर एक आर्यसमाजी छात्र बोल पड़ा- "सर, यदि आप उस समय हमारे चरित्र के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए यहाँ सभ्य और सुसंस्कृत भारत में आते तो बन्दरों और लंगूरों की तरह उस समय यूरोप के पेड़ों पर कौन लटकता?"

निष्कर्ष कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति के विदेशों में प्रसारित होने पर मध्य एशिया तथा अन्यत्र भी ज्ञान-विज्ञान का प्रसार हुआ था। हिन्दू सुपीरियोरिटी के लेखक श्री हरविलास शारदा ने लिखा है कि संसार के विभिन्न देशों में भारत ने अपने उपनिवेशों की स्थापना की थी और वहाँ भारतीय संस्कृति को प्रसारित तथा प्रचारित किया था। विद्वान् लेखक ने प्रमाणपूर्वक सिद्ध किया है कि औषधि विज्ञान, गणित, ज्योतिष, सैन्य विज्ञान, संगीत आदि भारत से इतर देशों में गये। सर्वप्रथम ईरान, तत्पश्चात्, ग्रीस (यूनान) होते हुए भारत की ये विधाएँ यूरोप में फैलीं।

जिस भारतीय संस्कृति ने अपनी विजय यात्रा के द्वारा सम्पूर्ण पश्चिमी देशों को नैतिकता, आचार, अध्यात्म तथा संयम का पाठ पढ़ाया उसकी सफलता का रहस्य था, उसमें पाये जाने वाले वे प्राणतत्त्व जिनकी उपस्थिति से ही हमारे देश की यह गौरवमयी संस्कृति मानवता को अभ्युदय और निःश्रेयस् का पाठ पढ़ा सकी। सर्वप्रथम तो हम यह ध्यान रखें कि इस संस्कृति ने परम्परा और प्रगति को तुल्य महत्त्व दिया है। हमारे यहाँ नवीन और प्राचीन के सदगुणों को ग्रहण करने पर सदा बल दिया गया है। तैत्तिरीयोपनिषद् में आये दीक्षान्त सन्देश में आचार्य का अपने शिष्यों के प्रति यही उपदेश और अनुशासन है कि वे उनके सद्गुणों को ही ग्रहण करें। सुचरितों का ही अनुकरण करें न कि अशिव और अभद्र बातों का। स्वस्थ और शालीन परम्पराओं को ग्रहण करने में हमें संकोच नही होना चाहिए, वहाँ यह भी ध्यान रहे कि जो कुछ नया है वह सर्वथा ग्रहण करने के योग्य ही हो, ऐसा नहीं है। कवि गुरु कालिदास के इस कथन में पर्याप्त सत्य है- 'पुराणमित्येव न साधु सर्वं' साथ ही यह भी ध्यान रखना होगा कि जो नया है वह सर्वांश में न तो शिव है और न अनुकरणीय तथा संग्रहणीय। स्वामी विवेकानन्द ने विश्वधर्म सभा को सम्बोधित करते हुए यही कहा था कि हमें आपके द्वारा भेजे जाने वाले उन धर्मप्रचारकों से अधिक जरूरत तो आपके देशों में आविष्कृत और प्रचारित नये ज्ञान-विज्ञान और तकनीक की है जिसके कारण आप लोग उन्नति तथा भौतिक प्रगति के शीर्ष पर पहुँचे हैं। स्वामी दयानन्द की भी यह चेष्टा थी कि हमारे देश के छात्र जर्मनी जाकर नवीन उद्योग तथा कला कौशल की शिक्षा लें।

भारतीय संस्कृति का प्राण तत्त्व रहे-बुद्धि, विवेक तथा चिन्तनशीलता को विकसित तथा प्रबुद्ध करना। यही कारण है कि वेदों की ऋचाओं में मेधा और बुद्धि की याचना की गई है। वैदिक प्रार्थनाओं में कहा गया है कि अग्नि के तुल्य तेजस्वी परमात्मा हमें उस मेधा से सम्पन्न करें जो हमारे पूर्वजों

और पितरों को प्राप्त थीं। विश्वविख्यात गायत्री मंत्र में भी सविता अर्थात् सृष्टि के उत्पन्नकर्ता परमात्मा से बुद्धियों को सन्मार्गों की ओर प्रवृत्त करने की विनय की गई है। जिस बुद्धि की हम याचना करते हैं वह देवताओं-भद्रजनों की कल्याणकारिणी बुद्धि है-**देवानां भद्रा सुमति**। हमारी यह भी इच्छा रहती है कि भद्र भावनाएँ चारों ओर से हमारे समीप आयें- **आ नो भद्रा क्रतवो यन्तु विश्वतः।** यद्यपि हमारी संस्कृति में श्रद्धा और विश्वास को भी पर्याप्त महत्त्व मिला है किन्तु यह श्रद्धा और विश्वास विवेक तथा तर्क पर आश्रित हों, यही श्रेयस्कर है।

भारतीय संस्कृति ने वैज्ञानिक सोच को महत्त्व दिया। धर्म के प्राण तत्वों से आपूरित होने पर भी हमारी संस्कृति ने अंधपरम्पराओं, गतानुगति तथा कूपमण्डूकत्व को भी प्रश्रय नहीं दिया। इस प्रकार विज्ञान और धर्म का सुखद समन्वय हमें सदा अभिप्रेत रहा। आचार्य मनु ने स्पष्ट घोषणा की थी कि जो तर्क के द्वारा अनुसन्धान किया जाता है अथवा तर्कप्रणाली से जाना जाता है। वही सच्चा धर्म है। आचार्य यास्क ने तर्कमूलक धर्म को प्रतिष्ठित करने की दृष्टि से एक आख्यान लिखा था जिसका सार यह था कि जब धर्म के साक्षात्कर्ता ऋषि इस धराधाम को त्याग गये तो उन्होंने तर्क को ही अपना प्रतिनिधि बनाकर यहाँ स्थापित किया था। धर्म और विज्ञान के बीच समन्वयशीलता के तत्त्वों को निर्धारित करने वाले भारतीय मनीषियों के पुरुषार्थ का ही परिणाम था कि यदि इस देश में मनु, याज्ञवल्क्य, विश्वामित्र, वसिष्ठ, अत्रि और वामदेव सदृश तत्त्व चिन्तक तथा कपिल, कणाद, व्यास, जैमिनी, पतञ्जलि तथा गौतम सदृश दार्शनिकों को सम्मान मिला तो चरक एवं सुश्रुत, वागभट्ट, वराहमिहिर तथा भास्कराचार्य सदृश वैज्ञानिकों को भी ऋषियों की श्रेणी में रखा गया। मनु ने धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी (बुद्धि), विद्या, सत्य तथा अक्रोध को धर्म का प्रमुख लक्षण बताया तो दयानन्द सरस्वती ने इन्हें सार्वजनिक (सर्वजन ग्राह्य) धर्म की संज्ञा दी।

उन्होंने विज्ञान को धर्म का ग्यारहवाँ लक्षण कहा।

पश्चिमी चिन्तकों ने एक और भ्रान्ति का प्रसार किया और इस देश के शासकों को जनतांत्रिक मूल्यों का हनन करने वाला, एकतन्त्रवादी तथा तानाशाही का पैरोकार बताया। मध्यकाल के परकीय शासन में यह स्वेच्छाचारिता तथा व्यक्तिकेन्द्रित शासन व्यवस्था कुछ सदियों तक चली, किन्तु हमारी संस्कृति और जीवन पद्धति सदा से ही प्रजातांत्रिक मूल्यों का सम्मान करती रही है। वेदों में 'सभा और समिति' को प्रजापति की दुहिताएँ (पुत्रियाँ) बताया गया है। मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, शुक्रनीति, चाणक्यनीति, कामन्दकीय नीति आदि पुरातन ग्रन्थों में शासक से यह अपेक्षा की गई है कि वह सामान्य जनता का विश्वास जीतकर अपनी शासन नीति का निर्धारण करे। दशरथ, जनक, कृष्ण, चाणक्य आदि राजर्षियों का आचरण और शिक्षा प्रमाणित करती है कि भारतीय संस्कृति ने लोक भावना का सदा सम्मान किया है। एक ओर यदि सत्य, अहिंसा, करुणा, दया, त्याग, क्षमाशीलता आदि भारतीय संस्कृति के प्राण तत्त्व रहे हैं तो दूसरी ओर, पौरुष, पराक्रम, साहस, औदार्य तथा संघर्ष की वृत्ति भी हमारी संस्कृति में विद्यमान रही है। यह बात नहीं कि संस्कृति के ये मौलिक तत्व केवल शास्त्र ग्रन्थों में ही उपनिबद्ध किये गये अथवा विद्वत् परिषदों में शास्त्रार्थ या सम्वाद के विषय बने, हमारे पूर्व पुरुषार्थ ने इन्हें अपने जीवन में लाकर इनकी व्यावहारिकता को प्रमाणित किया था। पुराकालीन महापुरुषों की चर्चा करें तो राम, कृष्ण, भीष्म, विदुर आदि भारतीय आदर्शों के प्रतीक रहे। राम ने एक ओर अपनी मनस्विता, धैर्य, क्षमाशीलता तथा उदात्तवृत्ति से जन-मन को मुग्ध किया तो साथ ही दुष्टों के दलन में वे कभी पीछे नहीं रहे। उनकी प्रतिज्ञा ही थी-**निसिचर हीन करौं मही भुज उठाय प्रण कीन**। द्वापरकालीन कृष्ण ने कर्मयोग का पाठ पढ़ा कर आततायियों का नाश करने के लिए अर्जुन को प्रेरणा दी। वहीं अर्जुन, जो स्वजनों के मोह से ग्रस्त होकर युद्ध से

पलायन करने के लिए तैयार हो गया था। एक समय 'न दैन्यं न पलायनम्' की प्रतिज्ञा करने वाले अर्जुन को अनार्यजुष्ट, क्लीवता तथा दुर्बलता को लक्ष्य कर कर्मयोगी कृष्ण ने उसे 'युद्धाय कृतनिश्चय' का पाठ पढ़ाया। छोटे-छोटे स्वेच्छाचारी राजे-रजवाड़ों में विभक्त आर्यावर्त को एक सार्वभौम धर्मराज्य में बाँधने के स्वप्न को साकार करने वाले कृष्ण को भारतीय मूल्यों तथा सांस्कृतिक तत्वों का सार सर्वस्व कहना उचित ही है। भारत की संस्कृति के जीवन मूल्यों को पुनः प्रतिष्ठित करने में महामति चाणक्य के योगदान को भुलाना कठिन है। अर्थशास्त्र और राजशास्त्र का समन्वित अध्याय प्रस्तुत करते हुए अर्थशास्त्र (कौटिल्यकृत) जैसे अद्भुत ग्रन्थ के लेखक विष्णुगुप्त चाणक्य भारत के वन्दनीय पुरुषों की प्रथम पंक्ति में आते हैं। पराधीनता ने जब हमारे राष्ट्र को समग्रतया आवेष्टित कर लिया था, उस निराशा की कालिमा को चीरते हुए स्वराज्य के उपासक महाराणा प्रताप, हिन्दू, हिन्द तथा भारतीयता के प्राण तत्वों को सुरक्षित करने वाले शिवाजी महाराज को भुलाना कठिन है जिनके प्रयत्नों से सारयुत वेद और पुराण बचे तथा हमारे गले का जनेऊ तथा हाथ की माला सुरक्षित रही। छत्रपति शिवाजी के न रहने पर हिन्दुओं की सुन्नत होना तो निश्चय ही था। अकालपुरुष के भक्त गुरु गोविन्दसिंह को विस्मृत करना कठिन है जिनके पिता अमर बलिदानी गुरु तेगबहादुर ने जुंडा (जनेऊ) और तिलक की रक्षा की और इस घोर कलिकाल में साका (बलिदान का इतिहास) रचा। भारतीय संस्कृति के प्राण तत्त्वों को विश्वव्यापी बनाने में राजा राममोहनराय, दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द तथा रामतीर्थ जैसे महापुरुषों का योगदान भी सश्रद्ध स्मरण किया जाना चाहिए। पुराकाल में इसी भारतभूमि का स्तवन और वन्दन देवताओं ने भी किया था।

गायन्ति देवा किलगीतकानि धन्यास्तु ये भारतभूमि भागे।

8/423, नन्दनवन,
जोधपुर

इंसानियत का कारखाना

-रेनू सैनी

एक बार एक सज्जन महान वैज्ञानिक आइंस्टाइन के पास आए। उन्होंने कुछ देर तक उनसे इधर-उधर की चर्चा की फिर बोले, 'आज विज्ञान ने एक से बढ़कर एक सुख-सुविधाओं के साधन बनाने में सफलता पा ली है। अब पलक झपकते ही दूरियाँ तय हो जाती हैं, कुछ ही क्षणों में सुविधाओं की सारी चीज़े हमारे पास आ जाती हैं, मगर फिर भी जाने क्या बात है कि समाज में अशांति, असंतोष, कलह व बुराई पहले की अपेक्षा ज्यादा पनप रही है। आखिर इसका क्या कारण है? सुविधाएँ अधिक होने पर तो इंसान को प्रसन्न होना चाहिए। उसके मन को शांति व संतोष मिलना चाहिए।' उस सज्जन की बातें सुनकर आइंस्टाइन बोले, 'मित्र, हमने शरीर को सुख पहुँचाने वाले तरह-तरह के साधनों को खोजने में अवश्य सफलता प्राप्त कर ली है किंतु जीवन में असली सुख शांति मन-मस्तिष्क को आंतरिक आनंद प्राप्त होने से मिलती है। क्या हमने इंसानियत का ऐसा कोई कारखाना लगाया है जिससे लोगों के अंदर मर रही संवेदनाओं को जीवित किया जा सके, उनके अंदर त्याग, ममता, करुणा, प्रेम आदि को उत्पन्न किया जा सके? क्या हमने ऐसा कोई कारखाना बनाया है जहाँ पर मन-मस्तिष्क को आनंद देने वाले साधनों का निर्माण किया जाता हो?" आइंस्टाइन की बात सुनकर वह सज्जन चकराए। उन्हें लगा शायद आइंस्टाइन ऐसा कोई कारखाना लगाने के बारे में सोच रहे हों, तभी ऐसी बात कर रहे हैं। लेकिन उन्हें लगा कि यह तो मुमकिन नहीं है। इसलिए कुछ देर सोचने के बाद उन्होंने अपनी जिज्ञासा रखी, 'भला इंसानियत के कारखाने का निर्माण कैसे संभव है? इंसानी भावनाएँ तो इंसान के अंदर पनपती हैं मशीन के अंदर नहीं।' उनकी बात सुनकर आइंस्टाइन ने मुस्कराते हुए कहा- 'जनाब, बिल्कुल ठीक कहा आपने। अशांति-असंतोष दूर करने के लिए हमें लोगों में इंसानियत की भावना पैदा करने की ओर ध्यान देना होगा। भौतिक साधनों से सुख-शांति कदापि नहीं मिल सकती।' वह सज्जन आइंस्टाइन की बात से सहमत हो गए।

'ALL RELIGIONS ARE TRUE'

-Swami Vivekanand

It fills my heart with joy unspeakable to rise in response to the warm and cordial welcome which you have given us. I thank you in the name of the most ancient order of monks in the world; I thank you in the name of the mother of religions, and I thank you in the name of millions and millions of Hindu people of all classes and sects.

My thanks, also, to some of the speakers on this platform who, referring to the delegates from the Orient, have told you that these men from far-off nation as may well claim the honour of bearing to different lands the idea of toleration. I am proud to belong to a religion which has taught the world both tolerance and universal acceptance. We believe not only in universal toleration but we accept all religions are true.

Universal Acceptance

I am proud to belong to a nation which has sheltered the persecuted and the refugees of all religions and all nations of the earth. I am proud to tell you that we have gathered in our bosom the purest remnant of the Israelites, who came to Southern India and took refuge with us in the very year in which their holy temple was shattered to pieces by Roman tyranny. I am proud to belong to the religion which has sheltered and is still fostering the remnant of the grand Zoroastrian nation. I will quote to you, brethren, a few lines from a hymn which I remember to have repreated from my earliest boyhood, which is everyday repeated by millions of human beings: "As the different streams having their source in different paths which men take through different tendencies, variuos though they appear, crooked or straight, all lead to Thee".

The present convention, which is one of the most august assemblies ever held, is in itself a vindication, a declaration to the world of the wonderful doctrine preached in the Gita:

"Whosoever comes to Me, through whatsoever form, I reach him; all men are struggling through paths which in the end lead to me." Sectarianism, bigotry, and its horrible descendant,

fanaticism, have long possessed this beautiful earth. They have filled the earth with violence, drenched it often with human blood, destroyed civilisation and sent whole nation to despair. Had it not been for these horrible demons, human society would be far more advanced than it is now. But their time has come; and I fervently hope that the bell that tolled this morning in honour of this convention may be the death-knell of all fanaticism, of all persecutions with the sword or with the pen, and of all uncharitable feelings between persons wending their way to same goal....

Much has been said of the common ground of religious unity. I am not going just now to venture my own theory. But if anyone here hopes that this unity will come by the truimph of any one of the religions and the destruction of the others, to him I say "Brother, yours is an impossible hope."Do I wish that the Christian would become Hindu? God forbid.

The seed is put in the ground, and earth and air and water are placed around it. Does the seed become the earth, or the air, or the water? No. It becomes a plant. It develops after the law of its own growth; assimilates the air, the earth, and the water, converts them into plant substance, and grows into a plant.

Message of Every Religion

Similar is the case with religion. The Christian is not to become a Hindu or a Buddhist, nor a Hindu or a Buddhist, become a Christian. But each must assimilate the spirit of the others and yet preserve his individuality and grow according to his own law of growth.

If the Parliament of Religions has shown anything to the world, it is this: It has proved to the world that holiness, purity and charity are not the exclusive possessions of any church in the world, and that every system has produced men and women of the most exalted character. In the face of this evidence, if anybody dreams of the exclusive survival of his own religion and the destruction of the others, I pity him from the bottom of my heart, and point out to him that upon the banner of every religion will soon be written in spite of resistance : "Help and not fight', 'Assimilation and not destruction, "Harmony and peace and not dissension'.

Date of Pubn. : 30.4.2017 Posted at - NIE - H.O. Postal Date : 2-3 May. 2017
RNI Reg. No. DELBIL/2007/22062 Postal Regd. No. DL(W) 10/2143/2017-2019

सेमं न काममापृण गोभिरश्वैः शतक्रतो।
स्तंवाम त्वा स्वाध्य।। ऋग्.1/31/4।।
ऋषिः–मेधातिथिः काण्वः, देवता–इन्द्रः, छन्द–गायत्री

हे शतक्रतो अनन्त कार्यों को सिद्ध करने वाले परमेश्वर आप अनन्त बल क्रियायुक्त हैं, ऐसे आप हमें गाय, घोड़े आदि श्रेष्ठ पशुओं और उत्तम इंद्रियों और चक्रवर्ती राज्य आदि ऐश्वर्य प्रदान करें और हमारे सब कार्यों को पूर्ण कीजिए। फिर हम भी सुबुद्धियुक्त होकर आपकी स्तुति करें। निश्चय ही आपके सिवाय अन्य कोई हमारे श्रेष्ठ कार्यों को पूर्ण नहीं कर सकता। जो आपको विसार कर किसी अन्य की उपासना और याचना करता है, उसके सब कार्य नष्ट हो जाते हैं।

Oh Lord of Infinitive Activity, You ordain the endless development going on in this world. We request You, Oh Lord, to fulfil our desire in this very life, by bestowing upon us powerful physical faculties and material wealth. This also is very clear to us that the desires of those who forget you and fix their hopes on others, are never fulfilled.

Printed by - Friendsprintofast, New Delhi-58